नया नेतृत्व मिले पार्टी को

यह जरूर पूछा जा सकता है कि ये स्वर कितने मजबूत हैं और पार्टी के अंदर सुधार की प्रक्रिया को किसी तार्किक परिणति तक ले जा सकते हैं या नहीं। इसमें दो राय नहीं कि ये चुनावी नतीजे कांग्रेस के लिए करारा झटका हैं।

सुमन वर्मा।।

पांच राज्यों के विधानसभा चुनावों के नतीजे आने के बाद अगर कांग्रेस के अंदर से असंतोष के स्वर उठने शुरू हुए तो इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। यह जरूर पूछा जा सकता है कि ये स्वर कितने मजबूत हैं और पार्टी के अंदर सुधार की प्रक्रिया को किसी तार्किक परिणति तक ले जा सकते हैं या नहीं। इसमें दो राय नहीं कि ये चुनावी नतीजे कांग्रेस के लिए करारा झटका हैं। पांच राज्यों की कुल 690 विधानसभा सीटों पर हुए हुए चुनावों में कांग्रेस बमुश्किल 55 सीटें जीत पाई। यूपी में 403 सीटों पर लड़कर वह महज दो सीटें हासिल कर सकी। पंजाब में आम आदमी पार्टी की आंधी के सामने वह टिक नहीं पाई। उत्तराखंड, गोवा, मणिपुर कहीं से भी ऐसी कोई खबर नहीं आई, जिससे थोड़ी बहुत भी तसल्ली मिल पाती। इसके बाद जी–23 के एक प्रमुख सदस्य गुलाम नबी आजाद ने कहा कि वह पार्टी को इस तरह मरते नहीं देख सकते। जी–23 के ही एक और अहम सदस्य शशि थरूर ने भी कहा कि अगर पार्टी कामयाब होना चाहती है तो बदलाव अनिवार्य हैं। ध्यान रहे जी–23 नाम तब सामने आया, जब कांग्रेस के 23 वरिष्ठ नेताओं ने अगस्त 2020 में पार्टी की कार्यकारी अध्यक्ष सोनिया गांधी को संगठनात्मक सुधार का सुझाव देते हुए पत्र लिखा था। हालांकि पार्टी नेतृत्व ने इनके प्रमुख सुझावों पर सहमति जताते हुए संगठनात्मक चुनाव का इरादा भी घोषित किया था, लेकिन कोरोना के कारण उन पर अमल नहीं हो सका।

बहरहाल, विचार–विमर्श को लेकर पार्टी नेतृत्व ने भी तैयारी दिखाई है। सोनिया गांधी ने चुनाव परिणामों पर विचार के लिए जल्द ही पार्टी कार्यसमिति की बैठक बुलाने की बात कही है। लेकिन बड़ा सवाल यह है कि विचार–विमर्श के नाम पर क्या होने वाला है और पार्टी के अंदर किस हद तक बदलाव स्वीकार किए जाने वाले हैं। क्या पार्टी को गांधी परिवार की अगुआई से मुक्ति मिलने वाली है? हालांकि गांधी परिवार से बाहर के किसी शख्स को राष्ट्रीय अध्यक्ष बनाने भर से इस बात की गारंटी नहीं हो जाती कि पार्टी में गांधी परिवार का प्रभाव समाप्त हो जाएगा। पहले भी कई बार पार्टी का नेतृत्व गांधी परिवार से बाहर के व्यक्ति के हाथों में गया है, लेकिन पार्टी इस परिवार के आभामंडल से बाहर नहीं निकल पाई। फिर यह बात भी है कि अच्छा हो या बुरा, पर पिछले काफी समय से यही परिवार पार्टी की मुख्य प्राण शक्ति भी बना हुआ है। ऐसे में पार्टी और गांधी परिवार, संकट दोनों के सामने है। वे जिन मूल्यों की भी बात करें, उन्हें बचाने की उनकी कवायद का कोई मतलब तभी बनता है, जब वे राजनीति में प्रासंगिक बने रहें। और राजनीति पूरी तरह बदल चुकी है। अगर देश की सबसे पुरानी पार्टी को इतिहास में दफन हो जाने से बचना है तो अपना कायाकल्प करना ही होगा।

कलाकृतियां

धर्म-दर्शन

अशोक वोहरा। आज भी मंदिर परिसर में यूनानी कला की कृतियां देखने को मिल जाएंगी।मंदिर परिसर में आज भी यूनानी कलाकृतियां देखने को मिल जाएंगी। सेना आगे बढ़ती देख सिकंदर हताश हो गया था। उसी को दर्शाता एक बुत यहां लगाया गया है। किंवदंती है कि पहले यहां गुज्जर रहते थे। उन्होंने इस पत्थर को तोड़ना चाहा। नहीं टूटा। उस समय के राजे को पता चला तो उसने सैनिक भेज पत्थर लेकर आने को कहा। मान्यता है– खुदाई करते मकौड़े यहां प्रकट हुए। जिन्होंने शिवलिंग की रक्षा की। आज भी यहां मकौड़ों की भारी संख्या देखने को मिलती है। मंदिर में स्थापित शिवलिंग अष्टकोणीय है जो अष्ट दिशाओं के वोध का प्रतीक है। शिव के रूप में पूजे जाने वाले शिवलिंग की ऊंचाई तो 8 फुट है वहीं माता पार्वती के रूप में पूजे जाने वाले हिस्से की ऊंचाई 6 फुट है।

संपादकीय

मोदी के मुकाबले मनमोहन

दुलत ने एक इंटरव्यू में यह भी कहा कि कश्मीर के लिहाज से नरेंद्र मोदी के मुकाबले मनमोहन सिंह का कार्यकाल बेहतर था। वो कहते हैं कि मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री थे तब चीजें बहुत बेहतर थीं। 2005 में मुशर्रफ दिल्ली आए और फिरोज शाह कोटला मैदान में क्रिकेट देखा था। कितनी हैरत की बात है कि मनमोहन सिंह के कार्यकाल में देशभर में बम धमाके हुए और वर्ष 2008 में भारत ही नहीं, पूरी दुनिया को हिलाकर रख देने वाला 26ध्11 का मुंबई हमला भी उन्हीं का शासन में हुआ था। क्या इन आतंकी हमलों का कश्मीर से कोई लेना–देना नहीं था? क्या पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद की शुरुआत कश्मीर के कारण नहीं हुई थी? दुलत कई बार विरोधाभासी दावे भी करते हैं। हकीकत यह है कि जेकेएलएफ आतंकी यासीन मलिक ने भी कहा था कि उसे कश्मीरी पंडितों के लौटने पर खुशी होगी, लेकिन वर्ष 2015 में केंद्र सरकार ने उनके लिए कॉलोनियां बनाने का प्रस्ताव लाया तो मलिक तुरंत विरोध में उतर गया। मसलन, कश्मीरियों को कभी वो बेहद उदार और सीधे–सादे बताते हैं तो कभी बहुत पेचीदे।

वो बताते हैं कि फारूक के पिता शेख अब्दुल्ला बीमार थे तब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी उनसे मिलने गईं और उनसे कहा कि अब फारूक को सरकार में शामिल कर लिया जाए।

दुलत डॉक्ट्रीन का मकसद क्या?

नवीन कुमार पाण्डेय।।

संभव है कि इस दुलत डॉक्ट्रीन के पीछे कोई गलत मंशा नहीं रही होगी। अलगाववादियों को अपने पक्ष में करके पाकिस्तान को पस्त किया जा सकता है, उनकी यह सोच अच्छी हो सकती है, लेकिन क्या कभी ऐसा हो पाया? कल्पना कभी वास्तविकता में बदल नहीं पाई तो फिर फेल्ड डॉक्ट्रीन पर टिके रहने का मतलब क्या है? क्या दुलत इतनी नैतिकता दिखा सकेंगे कि वो अलगाववादियों को भारत सरकार से संरक्षण दिलाने की नीति पूरी तरह फेल होने की जिम्मेदारी लें? कितनी हैरत की बात है कि भारत सरकार उन्हीं अलगाववादियों पर खजाने लुटाती रही जो पल–पल भारत के खिलाफ साजिशें रचते रहे। दुलत कहते हैं कि अलगाववाद की भावना को कभी बंदूक से नहीं दबाया जा सकता है। यह भी ठीक है, लेकिन अलगाववादियों को बातचीत से मनाने की नीति कब–कब और कितनी सफल रही, इसका जवाब कौन देगा। सवाल यह है कि क्या बंदूक से मसले का हल नहीं होता, यह बात सिर्फ सरकार पर लागू होती है या आतंकियों पर भी? आखिर ऐसा कैसे हो सकता है कि एक के लिए तो बंदूक सही है, दूसरे के लिए गलत।

वरिष्ठ पत्रकार प्रदीप सिंह अपने यूट्यूब प्रोग्राम में फारूक अब्दुल्ला के देशभक्त होने के दावे पर

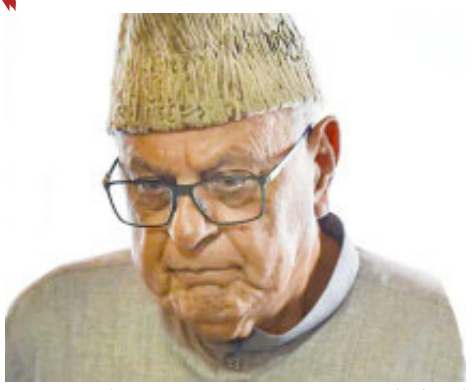

सवाल उठाते हुए एक घटना का जिक्र करते हैं। वो बताते हैं कि फारूक के पिता शेख अब्दुल्ला बीमार थे तब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी उनसे मिलने गईं और उनसे कहा कि अब फारूक को सरकार में शामिल कर लिया जाए। तब फारूक अब्दुल्ला लंदन में मेडिकल की पढ़ाई करके निकले थे। जब उन्हें बताया गया कि उन्हें मंत्री बनना है तो वो लंदन से पाकिस्तान गए और वहां जुल्फिकार अली भुट्टो को सारी बात बताकर पूछा कि उन्हें क्या करना चाहिए। प्रदीप सिंह कहते हैं कि भुट्टो ने उन्हें हरी झंडी तब वो कश्मीर आए और मंत्री बने। वो कहते हैं कि दुलत का यह कहना है कि फारूक ने कभी अलगाववादियों का समर्थन नहीं किया, यह उनकी देशभक्ति का प्रमाण नहीं हो सकता। वो कहते हैं कि फारूक अब्दुल्ला के लिए अलाववादी नेता प्रतिस्पर्धी थे, इसलिए उन्हें पसंद नहीं किया करते थे। फारूक अलाववादियों का विरोध इसलिए नहीं किया करते थे कि खुद बहुत बड़े राष्ट्रभक्त थे। उनका अलाववादियों के साथ हितों का टकराव है, इसे देशभक्ति का रंग देना गलत है।

एक इंटरव्यू में कहते हैं, 'कश्मीर बहुत पेचीदा है। कश्मीरी बहुत दयालु और उदार हैं। मैं जब भी कश्मीरियों से मिलता हूं, कुछ ना कुछ सीखता हूं। कश्मीरी इसलिए आपसे सच नहीं बोलते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि आप उनसे सच नहीं बोल रहे। दिल्ली हर चीज को ब्लैक एंड वाइट में देखता है जबकि कश्मीर प्रभावी तौर पर ग्रे है। वहां बहुत कुछ अस्पष्ट है जिस पर फोकस करने की जरूरत है।' लेकिन, मई 2017 में अंग्रेजी अखबार द इंडियन एक्सप्रेस को दिए इंटरव्यू में कहते हैं कि कश्मीरियों के मुकाबले पाकिस्तान से बात करना ज्यादा आसान है। वो कहते हैं, 'माफी चाहता हूं लेकिन यह सच है कि पाकिस्तान से बातचीत करना आसान है बनिस्बत कश्मीरियों के।'

इसी तरह, उनका दावा है कि कश्मीरी पंडितों को लेकर घाटी के बुजुर्गों और युवा पीढ़ी की सोच में अंतर है। वो कहते हैं, 'कश्मीर में पुरानी पीढ़ी के लोग कश्मीरियत की भावना से ओत–प्रोत हैं और उनका अंदाज सूफियाना है। वो कश्मीरी पंडितों की वापसी से खुश होंगे।'

सूडोकु नवताल-5318

2	9			5				4
4			2		7		8	
	1	6		8				3
8		5		9				7
3	6			2			1	9
1				3		5		2
5				7		6	3	
	3		1		8			5
9				6			2	1

- प्रत्येक पंक्ति में 1 से 9 तक के अंक भरे जाने आवश्यक हैं.
- प्रत्येक आड़ी और खड़ी पंक्ति में एवं 3×3 के वर्ग में किसी भी अंक की पुनरावृत्ति न हो इसका विशेष ध्यान रखें.
- पहले से मौजूद अंकों को आप हटा नहीं सकते.
- पहेली का केवल एक ही हल है.

सूडोकु नवताल -5317 का हल

7	8	1	6	9	4	2	5	3
2	6	4	5	3	6	1	7	9
5	3	9	1	2	7	4	6	8
9	5	8	7	4	1	3	2	6
1	2	3	9	5	6	7	8	4
4	7	6	3	8	2	9	1	5
3	9	7	2	6	5	8	4	1
6	4	2	8	1	9	5	3	7
8	1	5	4	7	3	6	9	2

अपना ब्लॉग

दुलत पर सवालों की फेहरिश्त

मोहन। पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई के पूर्व प्रमुख असद दुर्रानी के साथ किताब लिखी– जासूसों की कहानीरू रॉ, आईएसआई और शांति का भ्रम। दुलत 1999–2000 में रॉ चीफ थे जबकि दुर्रानी 1990–92 में आईएसआई के हेड थे। इसे लेकर भी सवाल उठते रहे हैं। दुलत पर सवालों की फेहरिश्त तो काफी लंबी है। लेकिन, सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्या वक्त के हिसाब से नीतियों में परिवर्तन नहीं होना चाहिए, खासकर तब जब कोई नीति ज्यादातर वक्त या हमेशा असफलता का स्वाद ही चखाते रहे? दुलत बंदूक और मार–काट की जगह बातचीत और शांति की सैद्धांतिक बातें तो करते हैं, लेकिन इन सिद्धातों की कामयाबी का कोई ठोस सबूत नहीं दे पाते हैं। वैज्ञानिक सोच तो यही कहती है कि जो प्रयोग फेल हो चुके हों, उसे बार–बार दुहराना तो समय की बर्बादी और मूर्खता ही है। निश्चित रूप से दुलत मूर्ख नहीं हैं, फिर भी असफल प्रयोगों को अनंत काल तक दुहराते रहने की जिद नहीं छोड़ते। ऐसे में कोई उनकी नीयत पर भी सवाल करे तो क्या यह ज्यादती होगी?